International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

# मोहनदास नैमिषराय के उपन्यास 'जख्म हमारे' में 'दलित समस्या'

**अन्नु**
**शोधार्थी– पी.एच.डी. (हिन्दी–विभाग)**
**महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय**

'जख्म हमारे' उपन्यास दुःख, वेदना, जातिगत हीनता दलितों पर सवर्णों के अत्याचार, साम्प्रदायिकता का दंश आदि समस्याओं से ओत–प्रोत है। साम्प्रदायिक दंगों में स्त्रियों पर होने वाले बुरे बर्ताव, बर्बरता, हिंसा आदि का मार्मिक वर्णन किया गया है। साम्प्रदायिकता के दंश ने किस प्रकार उच्च शिक्षित लोगों को भी अपने शिंकजे में कसा हुआ है, इसका वर्णन भी किया गया है।

आजकल हर क्षेत्र में दलित विमर्श एक महत्वपूर्ण समस्या, विचार का मुददा, बहस का मुद्दा बनकर उभरा है। समाज व राजनीति में इसका बोलबाला बढता ही जा रहा है। आधुनिक साहित्य में जब से 'दलित' शब्द का प्रयोग होने लगा है, तब से इस शब्द की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। दलित शब्द की उत्पति 'दल्' धातु से हुई है अर्थात् जिसका दलन किया गया हों। जो हाशिये पर विद्यमान हो, वह दलित है। हिन्दी शब्दकोशों में भी 'दलित' शब्द के विभिन्न अर्थ दिए गए है '' दलित (सं.) (स्त्री दलिता) (1) मसला हुआ, मर्दित (2) जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया हो (3) खंडित। (4) विनष्ट किया हुआ।''[1]

दलित – भू.कृ. (सं. दल्+क्त्) (1) जिसका दलन हुआ हो (2) जो कुचला, दला या रौंदा गया हो (3) टुकड़े – किया हुआ। चूर्णित (4) जो दबाया गया हो, अथवा जिसे पनपने या न बढने दिया गया हो हीन अवस्था में पड़ा हुआ (5) ध्वस्त या नष्ट किया था।''[2]

आमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि 'दलित' शब्द का अर्थ है– ''जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त–हिम्मत हतोत्साहित, वंचित आदि।''[3]

रत्नकुमार सांभरिया के शब्दों में – ''दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है, दबा हुआ। आत्मसम्मान और आत्मविश्वास की जिसमें कमी हो। अपमान, उत्पीड़न प्रताड़ना को जिसने अपनी नियति मान लिया हो।''[4]

सारे अर्थों और परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दलित से हमारा अभिप्राय– शोषित, पीड़ित, व्यथित, दबा हुआ, कुचला हुआ, रौदा हुआ और पदाक्रांत। शताब्दियों से चली आ रही वर्ण–व्यवस्था के शर्मनाक कुचक्र में फँसे रहकर तथाकथित उच्च वर्गों के सुनियोंजित षड़यंत्रों को निरूपाय मूक प्राणियों की भांति भोगने रहने वाले 'दलित' हैं। इनका उच्च वर्गों द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एंव आर्थिक शोषण तथा उत्पीड़न किया गया है।

मोहनदास नैमिशराय ने 'जख्म हमारे' नामक उपन्यास में इसी शोषण, उत्पीड़न, दुःख, वेदना की समस्या को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। उपन्यास का आरम्भ गुजरात में आये भूकम्प की त्रासदी के भयानक चित्रों के साथ होता है। भूकम्प से निवास स्थल नष्ट हो गये थे जो घर कुछ देर पहले पूरी शान–शौक्त से महल की भांति खंड़े थे, वे अब मलबा बन गये थे। चारों तरफ ईंट– पत्थर के ढेर लगे थे। प्रकृति की इस विनाशलीला में मनुष्य अब भी जातीयता की संकीर्ण गलियों से गुजर रहा था। शरणार्थी कैम्पों का बंटावारा जाति के आधार पर कर दिया गया। भोजन के लिए लाइनें भी इसी के अनुसार बनने लगी थी। 'गुलाम अहमद' नामक व्यक्ति के माध्यम से नैमिशराय जी ने दलितों के दयनीय जीवन को दर्शाया है। दलितों को

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

जमींदार सवर्ण अपने पैर की जूती समझते थें। उन्हें ऐसे कार्य दिए जाते थे, जोकि उपेक्षित श्रेणी में आते थे। गुलाम अहमद मलबों से शव निकालने का कार्य करता है। इस कार्य को करना, उच्च वर्ग अपने लिए उपेक्षित समझते थे, नीची कोटि का समझतें थें।

भूकम्प न चारों तरफ बरबादी का मंजर बना दिया था। धरती पर आयी इस आपदा के बावजूद भी मनुष्य वर्ण–भेद और जातीयता के रंगों को त्यागता नहीं है, जीवन की कोई किरण जब तक शेष रहती है, तब तक वह जातीयता के कुचक को तोड़ नहीं पाता है। जिसका एक उदारहण यहाँ दृष्टव्य है, भुकम्प के बाद सभी भोजन करन के लिए लाइनों में लगे थे तभी '' अचानक एक व्यक्ति ने अपने आगे खड़े व्यक्ति को देखा था, उसने उसे पहचानने की कोशिश की, पर उसको समझ में नही आ रहा था कि उसे कहाँ देखा था, वह बार–बार उसकी तरफ देखता और उसके भीतर से जातीय पहचान तलाशने की कोशिश करता। अपने इस प्रयास में वह पूरी तरह से बैचेन हो उठा। जैसे उसे याद आया, तभी कोध में वह चीख उठा था–

''ओह ढेड़''[5]

ठसी तरह जाति को माध्यम बनाकर दलित समाज को सम्बोधित किया जाता है। वह व्यक्ति उस पर चिल्लाता है और अलग लाइन में खड़ा होने के लिए कहता है।

''उसके पीछे खड़े हुए व्यक्ति ने नाराजगी के स्वर में कहा था, ''तू यहाँ क्यों खड़ा है? उधर जा और अपनी अलग लाइन बना'

उसने असमंजस में दोहराया था–

'अलग लाइन'

डाटने वाले व्यक्ति ने फिर से क्रोध भरे स्वर में कहा था, 'हाँ अलग लाइन'

डसने हिम्मत कर पूछा, 'पर क्यों'

जबकि दुसरा व्यक्ति वैसे ही गर्म स्वर में बोला था, 'तु हरिजन है इसलिए' इस बार उस व्यक्ति को गुस्सा आया था। उसका स्वर उखड़ गया था, ढेड़ होकर जबान चलाता है। मेरी नजरों से दूर हो।' इस बार पहले वाला व्यक्ति चुप हो गया था, जबकि डॉटने वाले व्यक्ति ने उस पर व्यंग्य कसा था 'कलियुग आ गया है, मुझे तो फिर से नहाना पड़ेगा।''[6] जातिगत भिन्नता दलितों के दुःखों का, उसकी यातनाओं का, समस्याओं का आधार है। ''गाँव में दलितों और सवर्णों की बस्तियाँ अलग–अलग थी। सुख–दुख में भी उनकी भागीदारी जातीय आधार पर ही थी।''[7] ''गाँव में स्कूल नहीं था, दलित समाज के लोग केवल मजदूरी करते थे। बच्चे बड़े होते–होते मजदूर बन जाते थे। वे डिप्टी कलक्टर नहीं बन पाते थे। आजादी के पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी उनके व्यवसाय वैसे ही थे। गाँव में सामुदायिक भवन था, जहा बैठकर सवर्ण दलितों के भाग्य का फैसला करते थे। दलित उनके निर्णय को कवेल सुनते थे।''[7] स्वर्ण समाज का दलितों पर आधिपत्य था। दलित लोग अगर पुलिस के पास उनकी शिकायत करने जाते हैं तो पुलिस भी उनके साथ बुरा बर्ताव करती है उन पर कटाक्ष करती है। गुलाम अहमद जब पुलिस स्टेशन में काम मांगन जाता हैं तो उसे पुलिस वालें उसकी जाति को लेकर उसका मजाक उड़ाते हैं। पुलिस इंस्पेक्टर उससे उसका परिचय पूछता है तो वह डर के मारे चुप हो जाता है। ''गुलाम क्या बतलाता भला, वह चुप ही रहा, इस बार पुलिसिया अंदाज में गुर्राया था इंसपेक्टर, ''जवाब नहीं देता स्साला'' तभी एक कांस्टेबल बोला था, 'इंस्पेंक्टर साहब हरिजन है यह।' व्यंग्य भरे स्वर में इस बार इंस्पेक्टर बोला था– 'स्साला हरिजन है तो.....। गाँधी मर गया, पर हरिजन अभी जिन्दा हैं।'

इंस्पेंक्टर की बात सुनकर पुलिस चौकी में बैठे तीनों सिपाही हँसे थे। तभी इंस्पेक्टर ने पत्थर की तरह उसकी ओर सवाल उछाल दिया था–

'पर इधर कैसे आया यह, इसकी बीवी के साथ बलात्कार हो गया या बेटी के साथ।''[9] ''आजादी के पचास वर्ष बीत जाने के बाद भी उन पर जुल्म और अत्याचार होते रहे हैं। सवर्णों की केन्द्रीय धारा में उन्हें जानबूझकर शामिल नही किया जाता रहा है। धन और धरती में इनकी हिस्सेदारी नगण्य थी।''[10]

दलितों की स्त्रियों को भी उनकी तरह ही परम्परागत कार्य सम्भालती थी। शिक्षित होने पर भी उन्हें उपेक्षित कार्य करने पड़ते हैं। जैसे रूक्मिणी को करना पड़ा। ''विवाह होने से दो–तीन माह पूर्व वही झाड़ू वाली की नौकरी करनी पड़ी उसे। रूक्मणी के हाथ में झाड़ू पकड़ा दी गई। बीस बरस से वह घर–घर जाकर पखाना साफ करती है। रूक्मणी देवी का नाम घटते–घटते रूक्मो रह गया था। नाम ही क्यों सभी कुछ तो घट गया था। सिर पर मैला ढोने वाली का क्या रूतबा होता है। रूतबा होता है, ब्रह्मा के मुख से पैदा होने वाली संतानों का, सदियों से अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर थे। फिर भी अंधेरे में कोशिश जारी थी। कभी तो इज्जत की नौकरी मिलेगी।''[2] दलित समाज से सम्बन्ध रखने वाला राजू परमार जब अपना परिचय देता है, सादिया को देता है तो उसकी लाचारगी उसके शब्दों में साफ झलकती है। ''कुछ पल बाद सोचते हुए बोला था वह, यही कि मैं गाँव में पैदा हुआ। दलित समाज से हूँ और मेरे पिता मजदूरी करते थे। जैसे वह और अधिक पूछना चाहती थी। राजू क्या बताए। गाँव में हाशिये पर बसी बस्ती की विषमता से भरी कथा या अभाव में बिताए गये दिन या फिर स्वर्णों के द्वारा उनकी जाति के लोगों पर किये गये जुल्म[3]। ये सारी चीजे दलित समाज की व्यथा कथा को हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

पुलिस वाले दलित समाज से संबंध रखने वाल गुलाम अहमद को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। उसके साथ निकृष्ट व्यवहार करते हैं। – '' चल जूते ले जा और पॉलिश कराकर ला जल्दी''।

गुलाम चुपचाप जूते उठाकर सुरजा के पास ले गया था। जानबूझकर उसने सुरजा से मजाक वाली बात नहीं बताई। उसकी जात के लोगों के साथ तो देश भर में लंबे समय से मजाक हो रहा था। कौन सी बात किस–किस को बतलाई जाए। ...। सामने गुलाम को आया देख तो टाँगें सीधी करते हुए कहा था–

'चल जल्दी कर पैरों में डाल जूते'

ग़लाम ने बारी–बारी में दोनों जूते उसके पांवों में डाले। फिर फीते बाँधें। बाद में वापस आकर वह वही बैठ गया।''[4]

निम्न जाति के लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करना सवर्ण समाज के लिए कोई नई बात नहीं थी। यह तो उनके साथ होता ही रहता था। ऐसा व्यवहार होने पर भी गुलाम अहमद वहाँ से जाता नहीं बल्कि वह वहीं खड़ा रहता है क्योंकि उसको काम की आवश्यकता है। तभी इंसपेक्टर उसको कहता है– ''अच्छा तू मलबे से लाशे निकालने का काम कर सकता है?

हवलदार की बात सुकर गुलाम को थोड़ा अजीब सा लगा था, कुछ बोला नही था वह।

'जवाब नही दिया तूने'

इस बार हवलदार का स्वर थोड़ा गुस्से में था। सुनकर वह घबरा गया था। हाँ करे। वह कुछ समझ नही पा रहा था। इससे पहले कि हवलदार फिर से उसे डाँटता, वह हड़बड़ाहट में बोला था–

'जो भी काम आप दोगे हवलदार जी मैं कर लूंगा।''[15] वे कार्य जो स्वर्ण समाज अपेक्षित और हेय की दृष्टि से देखते थे, वे सारे कार्य दलित लोग करते थे। गुलाम अहमद के इस कार्य पर हामी भरने से सिपाही लोग उसका मजाक उड़ाते हैं। उनमें से एक ने व्यंग्य करके कहा था–

''मुर्दो से बात किया करेगा स्साला''

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

पहले सिपाही की बात सुनकर दुसरे ने फब्ती कसी थी – 'हाँ श्मशान भी जाएगा और भूत–प्रेतों संग नाचगा भी' तीसरा भी कहाँ पीछे रहने वाला था, वह भी बोला था– 'भूत–प्रेतों से दोस्ती हो जाएगी तो इसकी किस्मत ही बन जाएगी फिर वे तीनों सामूहिक रूप से हँसे थे। अपनी मजाक सुनकर गुलाम ने अनमने भाव से उनकी ओर देखा था, लेकिन वह चुप ही रहा। कहता भी क्या''[6] इस तरह से दलित समाज सभी तरह के व्यंग्यों व कटाक्षों को सहन करते हुए अपना जीवन व्यापन कर देते हैं। आजादी के पचास वर्ष बाद भी उनकी स्थिति में भिन्नता नही आयी है।

सार रूप में हम कह सकते है कि नैमिशराय जी ने हमारे सामने दलितों की स्थिति, समस्याओं का यथार्थ चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। 'जख्म हमारे' उपन्यास दलित समाज की समस्याओं को प्रकाशित करने वाला आईना बन गया है दलित लोग विदेशी अंग्रेजों से तो स्वतंत्र हो गए परन्तु स्वदेशी लोगों के गुलाम वे अभी भी बने हुए हैं। उनके कार्य उपेक्षित हैं। उनकी सम्बोधन जातिगत शब्दों से किया जाता है। उनकी बस्तियों का नामकरण भी उसी तरह जाति के आधार पर किया जाता है।

अन्नु,
शोधार्थी,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

# lanHkZ xzaFk lwph

1 सं. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त शब्द सागर, पृष्ठ – 468

2 प्रधान सं. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड), पृष्ठ – 35

3 ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ–13

4 श्री रत्न कुमार सांभरिया, अपमान का द्योतक दलित साहित्य (लेख) लोकशासन, जयपुर, 2 जून 1993

उद्धृत– डा. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्यः रचना और विचार, पृष्ठ– 25

5 मोहनदास नैमिशराय, 'जख्म हमारे' वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2011, पृष्ठ – 10

6 वही, पृष्ठ – 11

7 वही, पृष्ठ – 20

8 वही, पृष्ठ – 21

9 वही, पृष्ठ – 29

10 वही, पृष्ठ – 75

11 वही, पृष्ठ – 78

12 वही, पृष्ठ – 79

13 वही, पृष्ठ – 101

14 वही, पृष्ठ – 32

15 वही, पृष्ठ – 33

16 वही, पृष्ठ – 33